इकाई–9

यजुर्वेद शिवसङ्कल्पसूक्त अध्याय 34 (6 मंत्र), अथर्ववेद पृथ्वीसूक्त 12.1 (1 से 18 मंत्र)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 यजु संहिता – परिचय

9.2 शिवसङ्कल्पसूक्त अध्याय–34 – व्याख्या (6 मंत्र)

9.3 अथर्ववेद भूमिसूक्त – काण्ड – 12 सूक्त 1 व्याख्या (18 मंत्र)

9.4 पारिभाषिक शब्दावली

9.5 अभायासार्थ प्रश्न

9.6 सारांश

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

संस्कृत विषय के ऐच्छिक पाठ्यक्रम के खण्ड 8 से सम्बन्धित इस इकाई में यजु:संहिता तथा अथर्वसंहिता के दो महत्त्वपूर्ण सूक्तों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप–

- यजुर्वेद के समान्य स्वरूप, विषय वस्तु तथा महत्त्व को बता सकेंगे।
- शिवसङ्कल्प सूक्त के विभिन्न मन्त्रों की व्याख्या समझ सकेंगे।
- मन्त्रों के विनियोग, ऋषि, देवता तथा छन्द का उल्लेख कर सकेंगे।
- विश्वप्रसिद्ध भूमि सूक्त (पृथिवी सूक्त) का भाव ज्ञात कर सकेंगे।
- मानसिक दृढ़ता के लिये मन्त्र किस प्रकार सहायक होते हैं, यह परिचय दे सकेंगे।

9.1 यजु: संहिता – परिचय :

ऋग्वेद के पश्चात् यजु: संहिता को ग्रहण किया जाता है। किंतु आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में यजुर्वेद के प्राथम्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि ''अध्वर्यु से सम्बन्धित यजुर्वेद में यज्ञ की प्रधानता है। इस उपजीव्य–यज्ञ की सिद्धि के लिए स्रोत तथा शस्त्र के रूप में ऋग्वेद तथा सामवेद है अत: इन दोनों के उपजीव्य यजु: का ही प्रथमत: व्याख्यान उचित है।'' –

''आध्वर्यवस्य यज्ञेषु प्राधान्यात् व्याकृत: पुरा।
यजुर्वेदोऽथ होत्रार्थमृग्वेदो व्याकरिष्यते॥''

[तैत्तिरीय संहिता भूमिका 6.5.10.3]

इस प्रकार याज्ञिक क्रिया कलापों के लिए उपादेय यजुः संहिता में यजुष है। 'यजुष' से तात्पर्य [गद्यात्मको यजुः] गद्यात्मक भाग से है। आचार्य जैमिनी के सूत्र "शेषे यजुः" [जै० सू० 2.1.36] का अभिप्राय भी यही है कि ऋक् तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मंत्रभाग ही 'यजु' है। महर्षि यास्क के अनुसार यज्ञ की दृष्टि से जो सर्वाधिक उपयोगी हो [भजुर्यजते–यास्क] अथवा जिससे यज्ञ किया जाय [इज्यतेऽनेनेति यजुः] वे यजुष् हैं। एक अन्य दृष्टि से जिन मंत्रों में अक्षरों की सीमा या संख्या निर्धारित न हो, वे यजु हैं–"**अनियताक्षरावसानो यजुः**"

यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं– आदित्य सम्प्रदाय तथा ब्रह्म सम्प्रदाय। वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्क्य द्वारा आख्यात "यजुर्वेद" आदित्य सम्प्रदाय का तथा कृष्ण यजुर्वेद ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ह। यह भेद, दोनों के स्वरूप पर आधारित है– शुक्ल यजुर्वेद में विभिन्न यागों के मन्त्रों का संकलन है तथा कृष्ण यजुः में तन्नियोजक ब्राह्मणों का सम्मिश्रण होने से कृष्णत्व है। कृष्ण यजुः की प्रमुख शाखा तैत्तिरीय के विषय में प्राचीन आख्यान ह कि "गुरु वैशम्पायन के क्रुद्ध होने पर याज्ञवल्क्य ने विद्या को मूर्तिमती कर वमन कर दिया तथा उस वान्त विद्या को वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया।" अतः वान्त–विद्या 'कृष्ण यजुः' कहलाई। इसके बाद याज्ञवल्क्य ने सूर्य की आराधना करके विद्या प्राप्त की जो 'शुक्ल यजुः' के नाम से विख्यात हो गई।

शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं अतएव तत्सम्बद्ध दो संहिताएं उपलब्ध होती है– (1) माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता तथा (2) काण्व संहिता। यज्ञ यागादि की दृष्टि से वाजसनेयि संहिता का सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें 40 अध्याय हैं, जिनमें अन्तिम 15 अध्याय खिल माने जाते हैं। चालीसवाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् है। इसमें दर्शपौर्णमास, अग्निचयन, चातुर्मास्य इष्टियों सोमयाग, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, वेदनिर्माण, सौत्रामणि अश्वमेध, पुरुषमेध तथा अश्वमेध आदि यज्ञों का विवेचन है। चौंतीसवां अध्याय सृष्टि विषयक शंकाओं का समाधान करता है। इस संहिता का प्रचार उत्तर भारत में सर्वाधिक है।

काण्व संहिता में भी 40 अध्याय हैं किंतु मंत्रों की संख्या अधिक है। विषय वस्तु भी माध्यन्दिन संहिता के अनुसार ही है। इस संहिता का प्रसार महाराष्ट्र में सर्वाधिक है।

कृष्ण यजुः की चार शाखाएं हैं। चरणव्यूह के अनुसार 85 शाखाएँ थी किंतु वर्तमान में चार शाखाएँ प्राप्त होती है तथा इनसे सम्बद्ध चार ही संहिताएँ प्राप्त होती है– (i) तैत्तिरीय, (ii) मैत्रायणी, (iii) कठ, (iv) कपिष्ठल संहिता।

तैत्तिरीय संहिता कृष्ण यजुः की प्रमुख संहिता है। इसमें 7 काण्ड हैं। इसमें अनेक विधयागों का वर्णन है। महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में इसका सर्वाधिक प्रचार–प्रसार है। आचार्य सायण की भी यही शाखा थी अतः उन्होंने इस पर सर्वप्रथम भाष्य की रचना की।

मैत्रायणी संहिता मैत्रायणी शाखा की संहिता है। इसमें 4 काण्ड हैं जिनमें 2144 मन्त्र हैं। इनमें से अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के हैं। इसमें भी यज्ञ यागों के सम्पादन की विधि का वर्णन है।

कठ संहिता तथा **कपिष्ठल संहिता** की विषयवस्तु एक ही है। कठ संहिता में 5 खण्ड तथा कुल 3091 मन्त्र हैं जिसमें विभिन्न यागों की विषयवस्तु सम्पादित है। कपिष्ठल संहिता अपूर्ण रूप में प्राप्त है।

9.2 शिवसङ्कल्पसूक्त अध्याय-34 – व्याख्या (6 मंत्र)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ १॥

पदपाठ- यत्। जाग्रतः। दूरम्। उदैतीत्युत् एति। दैवम्। तत्। उँ। इति। सुप्तस्य।

तथा। एव। एति।

दूरम्ऽगमम्। ज्योतिषाम्। ज्योतिः। एकम्। तत्। मे। मनः। शिवऽसङ्कल्पम्।

अस्तु।

अन्वय- यत् दैवं (मनः) जाग्रतः दूरम् उदैति, तदु सुप्तस्य तथैव एति। (यच् च) दूरंगमं, ज्योतिषां एकं ज्योतिः (अस्ति) तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ-यत् = जो। **दैवम्** = देवस्वरूप अथवा विज्ञान स्वरूप मन। **जाग्रतः** = जाग्रत पुरुष का। **उदैति** = दूर तक चला जाता है। **तदु** = वही मन। **सुप्तस्य** = सोये पुरुष का (भी)। **तथैव** = जाग्रत अवस्था के समान पुनः। **एति** = आ जाता है। **यत् च** = तथा जो मन। **दूरंगमं** = अतीत अनागत वर्तमानकाल में अवस्थित पदार्थों का ग्राहक है। **ज्योतिषं** = ज्ञानेन्द्रियों में। **एकं ज्योतिः** = एकमात्र श्रेष्ठ ज्योति है। **तत्** = वही। **मे मनः** = मेरा मन। **शिवसङ्कल्पम्** = शान्त या श्रेष्ठ संकल्प युक्त। **अस्तु** = होवे।

हिन्दी व्याख्या- जो समस्त विषयों का प्रकाशक होने से देवस्वरूप मन पुरुष की जाग्रत अवस्था में चक्षु आदि इन्द्रियों की अपेक्षा दूर तथा गमनशील है। वही मन पुरुष की सुप्तावस्था में उसी प्रकार समीप आ जाता है। जो सुदूर गति करने वाला तथा ज्ञानेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ ज्योतिस्वरूप ज्ञानेन्द्रिय है वही मेरा मन कल्याण कारी धर्मविषयक शुभ संकल्प से परिपूर्ण होवे।

संस्कृत व्याख्या-यत्मनः जाग्रतः पुरुषस्य चक्षुरादिभ्यः इन्द्रियेभ्यः दूरं गच्छति। वस्तुप्रकाशनसामर्थ्ययुक्तं देवस्वरूपं यत् मनः तथैव सुप्तावस्थायामपि अतीतानागतवर्तमानदीनां पदार्थानां ग्राहकं भवति। यच्च मनः श्रोत्रादीन्द्रि-याणामेकएव ज्योतिरस्ति। आत्मा मनसा संयुक्तं भूत्वा इन्द्रियमाध्यमेनैव अर्थान् गृह्णाति अतः अन्तरिन्द्रियात्मकं मनः एव श्रेष्ठं प्रकाशम् अस्ति। तादृशं मे मनः शान्तसङ्कल्पं कल्याणकारी धर्मविषयः संकल्पो यस्य तत् तादृशं भवतु।

टिप्पणियाँ-जाग्रतः = √जागृ जागरणे + शतृ प्रत्यय + षष्ठी एकवचन।

उ = उत् + √इण् गतौ + लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

सुप्तस्य = √स्वप् शयने + क्त प्रत्यय षष्ठी एकवचन।

दूरंगमं = दूर + √गम्लृ गतौ + खश् प्रत्यय।

ज्योतिः = √द्युत् दीप्तौ + क्तिन् प्रत्यय।

शिवसङ्कल्पम्= शिवः सङ्कल्पो यस्य तत्-बहुव्रीहिः।

छन्द- **त्रिष्टुप्**- इस छन्द में चार पाद होते हैं प्रत्येक पाद में 11-11 वर्ण होते हैं।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २॥

पदपाठ- येन। कर्माणि। अपसः। मनीषिणः। यज्ञे। कृण्वन्ति। विदथेषु। धीराः।

यत् अपूर्वम्। यक्षम्। अन्तरिति। प्रजानाम्। तत्। म। मनः। शिवऽसंकल्पम्। अस्तु।

अन्वय- येन अपसः मनीषिणः यज्ञे कर्माणि कृण्वन्ति (तथा) धीराः विदथेषु (कर्माणि कृण्वन्ति)। यत् अपूर्वं, यक्षं प्रजानाम् अन्तः (तिष्ठति) तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

शब्दार्थ-**येन**= जिस मन से। **अपसः**:= कर्मशील अर्थात् सक्रिय। **मनीषिणः** = मेधावी जन। **यज्ञ**= यज्ञ में। **कर्माणि**= श्रेष्ठ कार्य सम्पादित करते हैं। **धीराः**:= धैर्यशाली श्रेष्ठ पुरुष (जिस मन से)। **विदथेषु**= यज्ञ सम्बन्धी हवि आदि पदार्थों के ज्ञान में (कार्य करते हैं।) **यच्च** = तथा जो मन। **अपूर्वम्** = अपूर्व है। **यक्षम्**= पूज्य है। **प्रजानाम् अन्तः**:= प्रजाओं या प्राणिमात्र के शरीरों में अवस्थित रहता है। **तत्**= वही। **मे**= मेरा। **मनः**:= मन। **शिवसङ्कल्पम्**= शुभ संकल्प से परिपूर्ण। **अस्तु** = होवे।

हिन्दी व्याख्या-जिस मन के द्वारा कर्मशील ज्ञानीजन यज्ञ में विभिन्न श्रेष्ठ कार्यों को सम्पादित करते हैं। जिस मन से धैर्यशाली बुद्धिमान् जन यज्ञायोजन से सम्बन्धित विभिन्न सामग्री को सम्प्राप्त करते हैं। जो मन अपूर्व है अर्थात् जिसके पूर्व में कोई अन्य इन्द्रिय नहीं है, जो एकाग्रता आदि क्रियाविधियों से पूज्य है तथा जो समस्त प्राणियों के शरीर में ज्योति रूप से अवस्थित है। वही मेरा मन कल्याणकारी धर्मविषयक शुभसंकल्प से परिपूर्ण होवे।

संस्कृत व्याख्या-येन मनसा कर्मवन्तः मेधावीजनाः यज्ञे विविधानि श्रेष्ठ कर्माणि सम्पादयन्ति, यतोहि मनसः स्वास्थ्यं विना कर्माणि न सिद्ध्यन्ति। येन च धैर्यशालिनः विद्वांसः यज्ञसम्बन्धिनां हविरादिपदार्थानां ज्ञानेषु समर्थाः भवन्ति। यत् मनः अपूर्वं न विद्यते पूर्वमिन्द्रियं यस्य, यच्च स्तुत्यं, यच्च प्राणिनां शरीरेषु अन्तः ज्योतिरूपेणावस्थितम् अस्ति। तत् मम मनः शिवसङ्कल्पं भवेत्।

टिप्पणी-**कर्माणि**-कर्मन् + प्रथमा, बहुवचन। **अपसः**:- अपि इति कर्मनाम। अपस् + विनि प्रत्यय। 'विन्मतोर्लुक्' से विन् का लोप। प्रथमा बहुवचन। **मनीषिणः**:- मनीषा सन्ति यषां ते। मनीषा + इनि। **विदथेषु**- √विद् सत्तायाम् + कथच् प्रत्यय। सप्तमी बहुवचन। **यक्षम्**- √यज् + सन् (औणादिक) प्रत्यय।

छन्द- त्रिष्टुप्।

यत्प्रज्ञानमुत चेता धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 3॥

पदपाठ– यत्। प्रज्ञानम्। उत्। चेतः। धृतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः अमृतम्। प्रजासु॥

यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु।

अन्वय– यत् प्रज्ञानम् उत् चेतः धृतिः च (अस्ति)। यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः (अस्ति)। यस्मात् ऋते किंचन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

शब्दार्थ–यत्=जो मन। **प्रज्ञानम्**= विशिष्ट ज्ञान से अन्वित है। **उत्**=तथा। **चेतः** =ज्ञान का जनक है। **धृतिः च**=और धैर्य रूप है। **यत्**=जो। **प्रजासु** =प्रजाओं में। **अन्तः**=शरीर में स्थित। **अमृतम्**=अमृत स्वरूप। **ज्योतिः** = प्रकाश है। **यस्मात् ऋते**= जिस मन के बिना। **किंचन**= कोई भी। **कर्म**= कार्य। **न**= नहीं। **क्रियते**= किया जाता है। **तत् मे**= वही मेरा। **मनः** = मन। **शिवसङ्कल्पम्**= शुभ संकल्प से परिपूर्ण। **अस्तु**= होवें।

हिन्दी व्याख्या– जो मन प्रज्ञान है, जो सामान्य तथा विशेष ज्ञान का जनक है, जो धैर्यस्वरूप है, प्रजाओं अथवा प्राणियों के शरीरों में जो, अमृत स्वरूप ज्योति है। जिसके बिना मनुष्यों द्वारा कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता है, वही मेरा मन शुभ संकल्प से परिपूर्ण होवे जिससे कि शुभ व श्रेष्ठ यज्ञादि कार्य सम्पादित हो सकें।

संस्कृत व्याख्या– यत् मनः प्रज्ञानमस्ति प्रकृष्टज्ञानपरिपूर्णमस्ति यत् च सामान्य विशेषज्ञानजनकत्वात् चेतः अस्ति, यच्च धैर्यरूपमस्ति। यच्च मनः प्रजासु प्राणिषु वा अन्तर्वर्तमानं सत् ज्योतिः अमृतस्वरूपं विद्यते। यस्मात् मनसः ऋते जनैः किमपि कर्म न क्रियते। मनः स्वास्थ्यं बिना कोऽपि नरः कार्येषु प्रवृत्तः न भवति। तत् मम याज्ञवल्क्यस्य मनः शान्तसङ्कल्पं कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्पं यस्य तत् तादृशं भवतु।

टिप्पणी–प्रज्ञानम् – प्र + √ज्ञा जानना। ल्युट् प्रत्यय। **उत्**– समुच्चयार्थीय निपात। **चेतः**– √चिति संज्ञाने + असुन् प्रत्यय। **धृतिः**– धृ धारणे + क्तिन् प्रत्यय। **प्रजासु**– प्र + √जन् प्रादुर्भावे + ड + टाप् = प्रजा + सप्तमी बहुवचन। **ऋते**– 'ऋत' के योग में पंचमी का प्रयोग हुआ है।

छन्द– त्रिष्टुप्।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्म मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 4॥

पदपाठ– येन। इदम्। भुतम्। भुवनम्। भविष्यत्। परिगृहीतम्। अमृतेन। सर्वम्।

येन। यज्ञः। तायते। सप्तहोता। तत्। म। मनः। शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु॥

अन्वय- येन अमृतेन इदं सर्वं भूतं भुवनं भविष्यत् च परिगृहीतम्। येन सप्तहोता यज्ञः तायते, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ- **येन** = जिस। **अमृतेन** = अमृत स्वरूप अथवा शाश्वत इन्द्रिय मन से। **इदं सर्वं** = यह सम्पूर्ण। **भूतम्** = भूतकालीन जगत्। **भुवनम्** = वर्तमान कालिक जगत् (तथा) **। भविष्यत्** = भविष्यत काल में उत्पन्न होने वाला जगत्। **परिगृहीतम्**= सर्वतोभाव से व्याप्त है। **येन** = जिस मन से। **सप्तहोता** = सात ऋत्विजों से युक्त। **यज्ञः** = यज्ञ। **तायते** = विस्तृत किया जाता है। **तत्** = वही। **मे मनः** = मेरा मन। **शिवसङ्कल्पमस्तु**= शुभ संकल्प वाला होवें।

हिन्दी व्याख्या- जिस शाश्वत इन्द्रिय मन द्वारा यह समस्त भूलकाल, वर्तमान काल तथा भविष्यत् काल में उत्पन्न होने वाला जगत् व्याप्त है। तथा जिस मन से ही सात ऋत्विजों वाला सृष्टि यज्ञ विस्तृत किया जाता है वही मुझ याज्ञवल्क्य का मन शुभ, कल्याणकारी धर्मविषयक संकल्प से परिपूर्ण होवे जिससे कि समस्त जगत् का कल्याण हो सके।

संस्कृत व्याख्या-येन अमृतस्वरूपेन मनसा, यतो हि श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि नश्यन्ति मनस्तु अविनाशी अस्ति। इदं सर्वं भूतकाल सम्बन्धि, वर्तमान काल सम्बन्धि तथाच भविष्यत् काल सम्बन्धि जगत् परिव्याप्तमस्ति। येन अविनाशीमनसा सप्त होतृयुक्तः यज्ञः सम्यक्रूपेण सम्पादितः भवति, एतद् गुणविशिष्टं मम मनः शुभ सङ्कल्पपरिपूर्णं भवेत् यतः सर्वेषां प्राणिनां कल्याणं भवेदित्यर्थः।

टिप्पणी- **अमृतेन**- न मृतम् इति- नञ् तत्पुरुष समास। **भूतम्**- √भू होना + क्त। **भुवनम्**- √भू +क्यु प्रत्यय। **भविष्यत्**- √भू +शतृ प्रत्यय। 'लृटः सद् वा'। **तायते**- √तन् विस्तारे + यक्।

छन्द-त्रिष्टुप्।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिश्चितं सवमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 5॥

पदपाठ- यस्मिन्। ऋचः। साम। यजूंषि। यस्मिन्। प्रतिष्ठिता। रथनाभौ इव। अराः।

यस्मिन्। चितम्। सर्वम्। ओतम्। पजानाम्। तत्। मे। मनः। शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु।

अन्वय- यस्मिन् (मनसि) ऋचः, साम यजूंषि, रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः। यस्मिन् च प्रजानां सर्वं चित्तम् ओतम्। तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ-**यस्मिन्** = जिस मन में। **ऋचः** = ऋचाएँ। **साम** = साम मंत्र। **यजूंषि** = गद्यात्मक यजुर्मन्त्र। **रथनाभौ** = रथ की नाभि में। **अराः** = आरों के। **इव**= समान। **प्रतिष्ठिताः** = प्रतिष्ठित है। **यस्मिन् च** = तथा जिस मन में। **प्रजानाम्** = प्रजाओं अथवा प्राणियों का। **सर्वं चित्तम्** = सम्पूर्ण ज्ञान। **ओतम्** = निहित अथवा स्थापित है। **तत्** = वही। **मे मनः** = मेरा मन। **शिवसङ्कल्पम् अस्तु** = शुभ सङ्कल्प से परिपूर्ण होवे।

हिन्दी व्याख्या- जिस मन में ऋग्वेद की ऋचाएँ, सामवेद के मंत्र, यजुर्वेद के यज्ञोपयोगी मंत्र उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जिस प्रकार रथ की नाभि में आरे दृढ़ रूप से अवस्थित रहते हैं, मन के स्वस्थ होने

पर ही तीनों वेदों के उच्चारण की सामर्थ्य उत्पन्न होती है। जिस मन में प्राणियों का समस्त पदार्थ विषयक ज्ञान निहित रहता है, मन के स्वास्थ्य में ही ज्ञान की अवस्थिति रहती है। उपर्युक्त गुण विशिष्ट वहीं मेरा मन शुभ सङ्कल्पों से परिपूर्ण होवें।

सस्कृत व्याख्या- यस्मिन् मनसि ऋङ्मन्त्राः प्रतिष्ठिताः सन्ति, यस्मिन् गेयात्मकाः साममन्त्राः, यज्ञोपयुक्ताश्च यजुर्मन्त्राः प्रतिष्ठिताः सन्ति। यथा रथचक्रनाभौ आराः प्रतिष्ठिताः भवन्ति तथैव मनसः स्वस्थे सति वेदत्रयी अपि शब्दत्वेन समुद्र्भूता भवति। किंच यस्मिन् मनसि प्रजानां प्राणिनां वा सर्वं सर्वपदार्थविषयकं ज्ञानं निक्षिप्तं निहितं वा अस्ति। मनः स्वस्थे सति सर्वविध ज्ञानस्योत्पत्तिः भवति। तादृशं मम याज्ञवल्क्यस्य मनः शुभसङ्कल्पैः परिपूर्णं भवेत्।

टिप्पणी- **ऋचः**- (१) **तेषां ऋक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था**- जिसमें अर्थ के अनुसार देवताविषयक स्तुतियाँ छन्दोबद्ध रहती हैं, उन्हें ऋक् कहते हैं।

(२) **ऋक्,अर्चनी**-यास्क। जिन मन्त्रों से विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ की जाती है उन्हें ऋक् कहते हैं।

साम- '**ऋचि अध्यूढं साम**'- ऋङ्मन्त्रों पर गानात्मक प्रक्रिया 'साम' कहलाती है। सा + अम् अर्थात् सप्त स्वरों से अन्वित गेयात्मक मंत्र 'साम' कहलाते हैं। **यजूंषि**- '**गद्यात्मको यजुः**' 'शेषे यजु' 'अनियताक्षरावसानो यजुः' अर्थात् गद्यात्मक मन्त्र 'यजुः' कहलाते हैं। **प्रतिष्ठिताः**- प्रति + √स्था + क्त- प्रतिष्ठित + प्रथमा बहुवचन। **चितम्**- √चि चयने + क्त प्रत्यय।

छन्द- त्रिष्टुप्।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ 6॥

पदपाठ- सुषारथिः। अश्वान्। इव। यत्। मनुष्यान्। नेनीयते। अभीशुभिः। वाजिनऽइव।

हृत्। प्रतिस्थम। यत्। अजिरम्। जविष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवऽसङ्कल्पम्। अस्तु।

अन्वय- सुषारथिः अश्वान् इव यत् (मनः) मनुष्यान् नेनीयते, (यथा च) अभिशुभिः वाजिन इव (नेनीयते)। यच्च हृत्प्रतिष्ठम् अजरं, जविष्ठं (अस्ति) तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

शब्दार्थ- **सुषारथिः** = उत्तम या श्रेष्ठ सारथि। **इव** = जिस प्रकार। **अश्वान्** = अश्वों को (अभीष्ट गन्तव्य तक ले जाता है, उसी प्रकार)। **यत्** = जो मन। **मनुष्यान्** = मनुष्यों को। **नेनीयते** = ज्ञानतक अथवा लक्ष्य तक ले जाता है। **इव** = जिस प्रकार (कुशल सारथी)। **अभिशुभिः** = लगामों अथवा रश्मियों से। **वाजिन** = वेगवान् अश्वों को (नियन्त्रित करता है उसी प्रकार जो मन इन्द्रियों के वेग को नियन्त्रित करता है)। **यच्च** = तथा जो। **हृत्प्रतिष्ठम्** = हृदय में स्थित है। **अजिरम्** = जरा रहित है। **जविष्ठम्** = तथा अत्यन्त वेगवान है। **तत्** = वही। **मे मनः** = मुझ याज्ञवल्क्य का मन। **शिवसङ्कल्पम्** = शुभसङ्कल्पों से परिपूर्ण। **अस्तु** = होवें।

हिन्दी व्याख्या- उत्तम या श्रेष्ठ सारथि जिस प्रकार अश्वों को संचालित कर, उन्हें अभीष्ट गन्तव्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार जो मन मनुष्यों को, उनके अभीष्ट लक्ष्य तक ले जाने वाला है तथा जिस प्रकार कुशल सारथि रश्मियों से वेगवान् अश्वों की गति को नियन्त्रित करता है उसी प्रकार जो मन मनुष्यों की इन्द्रियों के वेग को नियन्त्रित करने वाला है तथा जो प्राणियों के हृदय में अवस्थित है, जरारहित है तथा अत्यन्त वेगवान् है वही मेरा मन शुभ संकल्पों से परिपूर्ण होवें।

संस्कृत व्याख्या- यथा श्रेष्ठ: सारथिर्यन्ता श्रेष्ठसंचालनेन अश्वान् अभीष्टगन्तव्यं प्रति नेनीयते तथैव मन: मनुष्यान् स्वलक्ष्यं प्रति कुशलतया नेनीयते। यथा च सुसारथि: रश्मिभि: वेगवन्त: अश्वान् नियमयति तथैव मन: इन्द्रियाणां वेगं नियमयति। अत्र उपमाद्वयं विद्यते। प्रथमायां नयनं द्वितीयायां नियमनं प्रदर्शितमस्ति। यच्च मन: प्राणिनां हृदि प्रतिष्ठितं जरारहितं अत्यन्त वेगवत् अस्ति। तादृशं मे मन: शुभसङ्कल्पै: परिपूर्ण: भवेत्।

टिप्पणियां- अश्वान्- 'अश्नुतेऽध्वानमिति' 'महाशनोभवतीति वा'- यास्क् अर्थात् जो मार्ग को तेजी से व्याप्त करे अथवा अत्यन्त भक्षण करे उसे 'अश्व' कहते हैं।

नेनीयते- √नी नयने + यङ् प्रत्यय। **वाजिन:**- वाज् गतौ +णिनि प्रत्यय। **जविष्ठम्**- √जव् गता + इष्ठन् प्रत्यय।

छन्द- त्रिष्टुप्।

9.3 अथर्ववेद भूमिसूक्त - काण्ड - 12 सूक्त 1 व्याख्या (18 मंत्र)

चारों संहिताओं में अथर्व संहिता अन्यतम है, लौकिक विषयों से सम्बद्ध होने से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट चित्रण अथर्ववेद में हुआ है। इसी को लक्ष्य करके मैक्डोनल ने कहा है कि ''सभ्यता के इतिवृत के अध्ययन के लिये ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलभ्यमान सामग्री कहीं अधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण है।'' अथर्ववेद में पारलौकिक फल-निष्पादक मंत्रो के साथ-साथ लौकिक अथवा ऐहिक फल निष्पादक मंत्रों का भी संग्रह है। आचार्य सायण ने भी अपनी अथर्ववेद भाष्य भूमिका में लिखा है कि -

''व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम्।
ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति॥''

वस्तुत: मानव का जीवन दु:खों से परिपूर्ण है तथा वह उन दु:खों को दूर करने में लगा रहता है। अथर्ववेद में उन समस्त दु:खों को दूर करने एवं सुखमय जीवन व्यतीत करने के उपायों का निर्देशन है, अतएव अन्य संहिताओं की अपेक्षा अथर्ववेद की लोकप्रियता सर्वाधिक रही है तथा इसके अध्ययन को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है। अथर्व परिशिष्ट में कहा गया है कि ''तिथि, नक्षत्र, ग्रह तथा चन्द्रमा आदि से नहीं अपितु अथर्व संहिता के मंत्रों से समस्त सिद्धियां होती है।[''न तिथिन .... भविष्यति॥'' अथर्व परिशिष्ट 2.5] स्कन्द पुराण में भी कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक अथर्ववेद के मंत्रो का जप करता है उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है।'' [''यस्तथर्वणान् .... ध्रुवम्॥'' स्कन्दपुराण]

राजा के लिए अथर्ववेद का सर्वाधिक महत्त्व है। जिस राजा के राज्य में अथर्व का ज्ञाता निवास करता है, वह उपद्रव रहित होता है, अतएव राजा को चाहिये कि वह अथर्वविद् ब्राह्मण का नित्य दान-सम्मानादि से सत्कार करे।[''यस्यराज्ञो .... समभिपूजयेत॥'' - अथर्व परिशिष्ट]